ISSN : 2395-4132

THE EXPRESSION

An International Multidisciplinary e-Journal

Bimonthly Refereed & Indexed Open Access e-Journal

Impact Factor 3.9

Vol. 6 Issue 3 June 2020

Editor-in-Chief : Dr. Bijender Singh

Email : editor@expressionjournal.com

www.expressionjournal.com

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मनुष्य के सकारात्मक एवं नराकात्मक व्यवहार का विश्लेषणात्मक वर्णन (श्रीमद भागवत् गीता के सन्दर्भ में)

डॉ0 निशु सिन्हा
सहायक प्राध्यापक (तदर्थ), इतिहास विभाग
गुरूघासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, विलासपुर, छत्तीसगढ़

Abstract

श्रीमद् भागवत गीता शास्त्र में मनुष्य मात्र का अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण आश्रम में स्थित हों, परन्तु भगवान में श्रद्धालु एवं भक्तियुक्त होना चाहिये। श्रीमद् भागवत् गीता जी में दो प्रमुख मार्ग बताये गये हैं। सांख्य योग एवं कर्मयोग। जिसमें सांख्ययोग प्रायः संन्यासियों के लिये एवं निष्काम कर्मयोग सभी के लिये उपयुक्त बताया गया है। श्रीमद्भगवत गीता के सोलहवें अध्याय में –''दैवासुरसंपद्विभागयोग'' में मनुष्य के व्यवहार के अनुसार उनके लक्षणों और उनकी गति का वर्णन किया गया है।

Key Words

निष्काम कर्म, दैवीय लक्षण, इन्द्रिय दमन, सांख्ययोग, इहलोक, परलोक, सिद्धान्त, अधिदैव, अधिभूत, ध्यानयोग, अन्तःकरण

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मनुष्य के सकारात्मक एवं नराकात्मक व्यवहार का विश्लेषणात्मक वर्णन (श्रीमद भागवत् गीता के सन्दर्भ में)

डॉ0 निशु सिन्हा
सहायक प्राध्यापक (तदर्थ), इतिहास विभाग
गुरूघासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, विलासपुर, छत्तीसगढ़

शोध पत्र–

प्रस्तुत शोध पत्र में श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार मनुष्य के सकारात्मक व नकारात्मक व्यवहार के लक्षणों की व्याख्या के साथ ही उनके परिणाम को दर्शाया गया है तथा मनुष्य को सकारात्मकता की ओर उन्मुख किया गया है।

गीता का सर्वप्रथम सिद्धान्त ईश्वर और परलोक में विश्वास। जो व्यक्ति ईश्वर और परलोक को माने वही आस्तिक है अर्थात जो गीता में विश्वास रखते हैं, उन्हें ईश्वर और परलोक को मानना ही होगा।

मनुष्य को सबसे पहले जानने योग्य यदि कोई तत्व है, तो वह ईश्वर तत्व है, इसे श्री गीता में जैसे समझाया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आता है।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।

(श्रीमद्भागवत् गीता)

जो परम अक्षर है, अर्थात जिसका कभी क्षय नहीं होता, वही ब्रह्म है और उनका स्वभाव सच्चिदानन्दमय है, यह श्रुति–स्मृति सबके द्वारा सिद्ध है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरूषश्चाधिदैवतम्

अधियज्ञोऽहमेंवात्र देहे देहभृता वर

(श्रीमद् भागवत् गीता)

जो क्षर (परिवर्तनशील और नाश होने वाला) भाव है, वह अधिभूत है और पुरूष अधिदैव है। देहधारी जीवों की देहों में ही अधियज्ञरूप में प्रतिष्ठित हूँ, अर्थात सच्चिदानंद स्वभाव, निर्गुण–निराकार, सदा एक रस रहने वाला भगवान का जो अक्षर भाव है, वहीं ब्रहभाव कहलाता है।

यही सब पुरूषोत्तमरूपी भगवान के पुरूष भाव का विस्तार है और प्रत्येक मनुष्य पिण्ड में जो सच्चिदानंद रूपी उनकी चेतन सत्ता से ओत–प्रोत रूप से विद्यमान है, वही भगवान का अधियज्ञरूप है।

ज्ञानवान् मनुष्य भगवान के अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत और अधियज्ञ भाव को जानकर अपना जीवन सार्थक बनाते हैं। इस प्रकार का सूक्ष्म विवेचन श्रीगीता को छोड़कर अन्य कहीं नहीं पाया जाता।

श्रीमद् भागवत गीता कर्मविज्ञान से परिपूर्ण है, कर्म का अद्भुत रहस्य सबसे अधिक स्पष्ट और विस्तार पूर्वक गीता शास्त्र में पाया जाता है। मनुष्य के कर्म से ही उसकी व्यवहार एवं उसकी पृवत्ति की पहचान की जा सकती है।

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः

दानं दमश्च स्वाध्यायन्तप आर्जवम्

(श्रीमद् भागवत गीता षोडशोध्याऽयाय :।। 1।।)

अर्थात सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्व ज्ञान के लिये ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान तथा इन्द्रियों का

दमन, भगवत् पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मो का आचरण शास्त्रों के पठन–पाठन पूर्वक भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन तथा स्वधर्मपालन के लिये कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता।

निष्काम भाव से संग (अभिनिवेश) से रहित और राग–द्वेष को छोड़कर जो कर्म किया जाता है, वह सात्विक कर्म है।

फल की आकांक्षा रखकर अहम् के साथ बहुत आयासयुक्त जो कर्म किया जाता है, वह राजसिक कर्म कहा जाता है तथा परिणाम का विचार ना कर मोह से जो कर्म किया जाता है वह तामसिक कर्म है।

कर्म का अनुष्ठान न करने से नैश्कर्म्य (ज्ञान की सिद्धि) नहीं होती है। बिना कर्म किये क्षणभर भी कोई नहीं रह सकता। राग–द्वेषादि प्रकृति के गुण, मनुष्य को विवश करके उससे कर्म करवा ही लेते हैं।

सत्कर्म के लिये जो कर्म किया जाता है, उसके अतिरिक्त किया गया कर्म बन्धक के कारण होते हैं। अतः आसक्तिहीन होकर सर्वदा कर्तव्य रूप उसे निहित कार्यो का अनुष्ठान करना चाहिये।

श्रीमद् भागवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते है कि हे पार्थ ! मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं बच जाता है। त्रिभुवन में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं हैं जो मुझे प्राप्त ना हुई हो या मेरे पाने योग्य हों फिर भी मैं निरन्तर कर्म ही करता रहता हूँ।

सदाचार (उचित व अनुचित व्यवहार) के विषय में संक्षेप रूप से कई स्थानों पर वर्णन आया है। यथा–

प्रवृन्तिं व निवृन्तिं च जना न विदुरासुराः।

न शौचं नापि चाचारों न सत्यं तेषु विद्यते।।

इस श्लोक से तात्पर्य है कि आसुरी प्रवृति वाले मनुष्य धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म में निवृत्ति नहीं जानते अर्थात वे धर्माधर्म –विचार शून्य होते हैं। इस कारण वे

शौच (शुद्धविवेक) तथा आचार (धर्मानुकूल शारीरिक क्रियायें) को नही जानते और सत्यहीन होते हैं, अर्थात सत्य का पालन नहीं करते। दूसरी ओर श्रीगीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पत्ति के लक्षणों में श्री भगवान ने स्पष्ट किया है, जो निम्नलिखित है–

अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्यागः शान्ति2पैशुनम्

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं प्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम।।

मन वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा यथार्थ और प्रिय भाषण करना तथा अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न आना, कर्मो में कर्तापन के अभिमान का त्याग एवं अन्तः करण की उपरामता अर्थात चित्त की चंचलता का अभाव और किसी की भी निंदा न करना तथा सब भूतप्रणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों के विषय के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरूद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्ठाओं का अभाव–

तेजः क्षमा घृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।

तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव यह सब तो हे अर्जुन दैवी संपदा को प्राप्त हुये पुरूष के लक्षण है।

दम्भो दपोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्

हे पार्थ पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान यह सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरूष के लक्षण है।

निष्कर्ष–

अतः उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसार कर्म प्रधान है, तथा निष्काम भाव से ईश्वर को समर्पित कर जो कर्म किया जाता है, वहीं सार्थक है, इसी से मनुष्य अपना तथा संसार का कल्याण कर सकारात्मक व्यवहार से पूर्ण हो जाता है, उसके सम्पर्क में आने वाले भी सकारात्मकता से भर जाते हें।

दूसरो से ईर्ष्या, द्वेष रखकर केवल अपना हित का साधन करने के लिये घृणित कर्म को भी अपनाने वालों का भी अहित ही होता है। वह अपनी नकारात्मकता एवं नकारात्मक व्यवहार द्वारा स्वयं का और अपने सम्पर्क में आने वालों का अहित करता है।

इस प्रकार कर्मवाद का सूक्ष्म विवेचन श्री गीता को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता है। धर्म के सब अर्थो का विवेचन करने वाले और भगवान के स्वरूप के निदर्शक गीताशास्त्र को जो हृदयगमं करेगा उसके लिये नास्तिकता अर्कमण्यता तथा नकारात्मकता का अवकाश ही नहीं रह जायेगा।

वर्तमान समय में मनुष्य को श्रीगीता कथित दैवी प्रकृति और आसुरी प्रकृति के लक्षणों को अवश्य ध्यान में रखकर विचार करके तब कार्य एवं व्यवहार करना चाहिये, इसी में मानव मात्र एवं विश्व का कल्याण निहित है। सकारात्मक व्यवहार को हम सरल शब्दों में निम्न प्रकार से समझ सकते है–

जो सबके हित में नित आवै,
पर–सुख देखि परमसुख मानत सोई परम फल पावै।
समुझि ईश के रूप जीव सब सादर सीस नवावै
देइ अहार अम्बु तृन औषध सबकी बिथा मिटावै
मनहिं सुधारिं धारि हरि हिय में दुविधा दुरित दुरावै
योगी सकल भूत–हित–तत्पर शान्त ब्रहा पद पावै।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।।

संन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीमद् भागवत गीता
2. विष्णु पुराण
3. कल्याण (पत्रिका)
4. गरूण पुराण
5. अखण्ड ज्योति
6. शिव महापुराण
7. महापुरूषों के कथन, विचार एवं प्रवचनों से उद्द्यत विचार
8. श्रीविष्णु सहस्त्रनाम
9. श्री रामचरित मानस